

## अकलङ्कग्रन्थत्रय : एक अनुचिन्तन

• डॉ० कमलेशकुमार जैन, वाराणसी

डॉ० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य द्वारा सम्पादित विविध प्राचीन ग्रन्थोंकी शृङ्खलामें आचार्य भट्टाकलङ्कदेव द्वारा रचित लघीयस्त्रय, न्यायविनिश्चय और प्रमाणसंग्रह—इन तीन ग्रन्थोंको संकलित कर 'अकलङ्कग्रन्थत्रयम्' के नामसे सम्पादित किया गया है, जो सिंघी जैन ज्ञानपीठ कलकत्ता द्वारा सिंघी जैन ग्रन्थमालाके बारहवें पुष्पके रूपमें सन् १९३९ में प्रकाशित हुआ है। आजसे लगभग छपन वर्ष पूर्व प्रकाशित विस्तृत प्रस्तावना, विविध टिप्पणियों, पाठ भेदों एवं अनेक परिशिष्टोंसे अलंकृत प्रस्तुत ग्रन्थ आज भी उतना ही प्रामाणिक, उपयोगी एवं कार्यकारी है, जितना इतः पूर्व रहा है।

उक्त ग्रन्थत्रयके कर्ता भट्टाकलङ्कदेव जैनदर्शनके एक महान् ज्योतिषर आचार्य थे। यदि वे स्वामी समन्तभद्रके उपज सिद्धान्तोंके उपस्थापक, समर्थक, विवेचक और प्रसारक थे तो सम्प्रति ईसाकी इस बीसवीं शताब्दीमें डॉ० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य स्वामी समन्तभद्र और भट्टाकलङ्कदेव इन दोनों आचार्योंके द्वारा रचित ग्रन्थोंके उद्धारकर्ता तथा हिन्दी भाषामें तुलनात्मक अध्ययनके माध्यमसे दार्शनिक जगत्के समक्ष उक्त दोनोंके सिद्धान्तों/विचारोंके प्रस्तोता हैं।

डॉ० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्यने 'अकलङ्कग्रन्थत्रयम्' पर लिखी गई अपनी हिन्दी प्रस्तावनाको सर्वप्रथम दो भागोंमें विभाजित किया है—ग्रन्थकार और ग्रन्थ। ग्रन्थकार अकलङ्कदेवकी जन्मभूमि एवं पितृकुल पर विचार किया है। साथ ही उनके स्थिति काल पर भी विचार किया है। उनके द्वारा काल निर्णयकी पद्धति बहुत ही युक्तियुक्त किंवा तर्कसंगत है। अतः भट्टाकलङ्कदेवका समय सन् ७२० के पहले नहीं माना जा सकता है। इस क्रममें उन्होंने भट्टाकलङ्कदेवके ग्रन्थोंकी तुलना अनेक वैदिक दार्शनिकोंके साथ की है। यही पद्धति उन्होंने न्यायकुमुदचन्द्र, प्रमेयकमलमार्तण्ड और सिद्धिविनिश्चय आदि ग्रन्थोंकी प्रस्तावनाओंमें भी अपनाई है।

प्रस्तुत 'अकलङ्कग्रन्थत्रयम्' में भट्टाकलङ्कदेवकी तीन मौलिक कृतियों—लघीयस्त्रय, न्यायविनिश्चय और प्रमाणसंग्रहका वैज्ञानिक पद्धतिसे सम्पादन होकर प्रथम बार प्रकाशन हुआ है। हाँ, इतः पूर्व लघीयस्त्रय की मात्र मूलकारियोंके साथ अभयचन्द्र कृत वृत्ति अवश्य प्रकाशित हुई है। किन्तु प्रस्तुत ग्रन्थत्रयमें लघीयस्त्रयकी मूलकारिकाएँ तो हैं ही, साथ ही उनपर स्वोपज्ञ विवृति भी प्रकाशित है। लघीयस्त्रय पर आचार्य प्रभाचन्द्र द्वारा लिखी गई अठारह हजार श्लोक प्रमाण न्यायकुमुदचन्द्र टीकासे उत्थान वाक्य चुनकर दिये हैं। इसी प्रकार न्यायविनिश्चय में वादिराजसूरि विरचित बीस हजार श्लोक प्रमाण न्यायविनिश्चय विवरणसे लिये हैं। प्रमाणसंग्रहकी प्राचीन टीका उपलब्ध न होनेसे उसे ज्योंका त्यों मुद्रित किया है। हाँ; कहीं-कहीं आद्य भागसे कारिकाशको छाँटकर ब्रेकेटमें दे दिया गया है। किसी भी टीका या भाष्यसे मूल कारिकाको निकाल लेना बहुत बड़े परिश्रम एवं साहसकी बात है, जिसे डॉ० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्यने सम्पन्न किया है। यह उनकी स्फूर्त प्रतिभाका एक उत्कृष्ट पक्ष है।

डॉ सा० ने लघीयस्त्रयको अकलङ्ककर्तृक सिद्ध करने हेतु जिस पद्धतिका प्रयोग किया है, वह अति महत्त्वपूर्ण है। ग्रन्थके आन्तरिक साक्ष्योंको तो उन्होंने ग्रहण किया ही है, साथ ही अन्य परवर्ती ग्रन्थकारों द्वारा उद्धृत लघीयस्त्रयकी कारिकाओंके उद्धारणोंको अकलङ्कदेवके नामोल्लेख पूर्वक जहाँ-जहाँ ग्रहण किया

गया है, उन उद्धरणोंको भी विभिन्न ग्रन्थोंसे संकलित कर अपने कथनकी पुष्टि की है। इसी प्रकार अन्त-र्बाह्य साक्ष्योंके द्वारा न्यायविनिश्चय और प्रमाणसंग्रहके अकलङ्ककर्तृक होनेकी पुष्टि एवं समर्थन किया है, जिससे डॉ० सा० के अत्यायुमें ही विविध सम्प्रदायोंके शास्त्रोंके पारायण करनेकी जानकारी मिलती है। वे जिस ग्रन्थका अध्ययन करते थे उसमें उनकी शोध-खोज दृष्टि सतत् बनी रहती थी। वे ग्रन्थका मात्र वाचन ही नहीं करते थे, अपितु सम्पूर्ण ग्रन्थकी शल्यक्रिया करके उसे पूर्णतः आत्मसात् कर लेते थे।

पण्डितजीने पहले ग्रन्थत्रयका संक्षेपमें सामान्य परिचय दिया है। तत्पश्चात् उनके विषय पर एक साथ विचार किया है। इससे आचार्य अकलङ्कदेवके एतद्विषयक विवेचनका समवेत रूपमें हम सभीको ज्ञान हो जाता है।

इस ग्रन्थकी सम्पादन कलाका सबसे अधिक महत्वपूर्ण विषय है इस ग्रन्थकी प्रस्तावनाके अन्तर्गत सुप्रसिद्ध प्राचीन जैनेतर प्रमुख दार्शनिक ग्रन्थकारोंके ग्रन्थों और विषयोंसे आचार्य अकलङ्कके ग्रन्थोंका तुलनात्मक अध्ययन। यहाँ मुख्यतः भर्तृहरि, कुमारिल, धर्मकीर्ति, प्रभाकरगुप्त, कर्णकगोमि, धर्मकीर्तिके यशस्वी टीकाकार धर्मोत्तर, शान्तरक्षित आदि अनेक ग्रन्थकारोंसे आचार्य अकलङ्कदेवका तुलनात्मक, समीक्षात्मक और विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है जो परस्पर आदान-प्रदान, योगदान एवं प्रभाव आदि दृष्टियोंसे अध्ययन हेतु अति महत्वपूर्ण है।

ग्रन्थत्रयके नामका इतिहास तथा उनका परिचय प्रस्तुत करते हुए पं० जीने प्रथम ग्रन्थके परिचयमें स्वयं लिखा है कि “लघीयस्त्रय नामसे मालूम होता है कि यह छोटे-छोटे तीन प्रकरणोंका एक संग्रह है। ग्रन्थ बनाते समय अकलङ्कदेवको ‘लघीयस्त्रय’ नामकी कल्पना नहीं थी। उनके मनमें तो दिङ्नागके न्याय-प्रवेश जैसा एक जैनन्यायप्रवेश बनानेकी बात घूम रही थी। लघीयस्त्रयके परिच्छेदोंका प्रवेशरूपसे विभाजन तो न्यायप्रवेशको आधार माननेकी कल्पनाका स्पष्ट समर्थन करता है।” मुझे ऐसा लगता कि यह सूझ अनन्त-वीर्य आचार्य की है, क्योंकि लघीयस्त्रय नामका सबसे पुराना उल्लेख सिद्धि विनिश्चयटीकामें मिलता है। लघीयस्त्रयके इसी संस्करणके आधार पर इसका हिन्दी अनुवाद सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचंदजी द्वारा कुछ वर्ष पूर्व किया गया, जो श्री गणेश वर्णी दि० जैन संस्थान नरिया, वाराणसी से शीघ्र प्रकाशित हो रहा है।

द्वितीय ग्रन्थ “न्यायविनिश्चय” है। इसका नाम धर्मकीर्तिके गद्यपद्यमय “प्रमाणविनिश्चय” का अनुकरण लगता है। न्यायविनिश्चयमें प्रत्यक्ष, अनुमान और प्रवचन-नामके तीन प्रस्ताव हैं। अतः संभव है कि अकलङ्कके लिए विषयकी पसंदगीमें तथा प्रस्तावके विभाजनमें आ० सिद्धसेन कुत न्यायावतार प्रेरक हो और इसीलिए उन्होंने न्यायावतारके ‘न्याय’ के साथ ‘प्रमाणविनिश्चय’ के ‘विनिश्चय’ का मेल बँठाकर न्यायविनिश्चय नाम रखा हो।

लघीयस्त्रयमें तृतीय ग्रन्थ ‘प्रमाणसंग्रह’ है। इसकी भाषा विक्षोभकर विषय तो अत्यन्त जटिल तथा कठिनतासे समझने लायक प्रमेय-बहुल ग्रन्थ है। इसकी प्रौढ़ शैलीसे ज्ञात होता है कि यह इनकी अन्तिम कृति है, जिसमें इन्होंने अपने यावत् अवशिष्ट विचारोंके लिखनेका प्रयास किया है, इसीलिए प्रमाणों-युक्तियोंका संग्रह-रूप यह ग्रन्थ इतना गहन हो गया है। पं० मुखलालजी संघवीके अनुसार इस ग्रन्थका नाम दिङ्नागके प्रमाणसमुच्चय तथा शान्तरक्षितके तत्त्वसंग्रहका स्मरण दिलाता है। किन्तु पं० महेन्द्रकुमारजीके अनुसार तत्त्वसंग्रहके पहिले भी प्रशस्तपाद भाष्यका “पदार्थसंग्रह” नाम प्रचलित रहा है। संभव है कि संग्रहान्त नाम पर इसका भी कुछ प्रभाव हो।

## ३६ : डॉ० महेन्द्रकुमार जैन न्यायाचार्य स्मृति-ग्रन्थ

इस तरह लघुयस्त्रयमें संग्रहीत तीनों ग्रन्थ अपने नाम को सार्थक करते हैं। जिनका प्रस्तुत प्रामाणिक सम्पादन कार्य पं० जीने वैज्ञानिक विधिसे किया है। वस्तुतः आ० अकलंकदेवके ग्रन्थोंका इस रूपमें सम्पादन करना कोई साधारण कार्य नहीं है। इसके लिए पं० जीको जैन एवं जैनेतर अनेक प्राचीन ग्रन्थों और ग्रन्थ-कारोंका गहन अध्ययन, मनन और तुलनात्मक विवेचन करना पड़ा। आ० अकलंकदेवके साहित्य और उसमें प्रतिपाद्य विषयोंके तलस्पर्शी ज्ञानके बिना ऐसा सफल सम्पादन असम्भव कार्य था किन्तु उनके इस कार्यमें सफलतासे यही सिद्ध होता है कि पं० महेन्द्रकुमारजी भी उस महान् विरासतके सच्चे प्रहरी थे। क्योंकि आचार्य अकलंकदेव जब आगमिक विषय पर कलम उठाते हैं तब उनके लेखनकी सरलता, विशदता एवं प्रसाद गुणका प्रवाह पाठकको पढ़ने ऊबने नहीं देता। राजवार्तिककी प्रसन्न रचना इसका अप्रतिम उदाहरण है। परन्तु जब वही अकलंक तार्किक विषयों पर लिखते हैं तब वे उतने ही दुरुह बन जाते हैं। यहाँ इनके प्रमाण विवेचनका विषय प्रस्तुत है—

प्रमाणके भेदोंके प्रसङ्गमें आचार्य अकलङ्कदेवके दृष्टिकोणको स्पष्ट करते हुये डॉ० सा० ने उसके भेदोंको जिस पद्धतिसे प्रस्तुत किया है उसका एक उदाहरण द्रष्टव्य है। उन्होंने अपनी प्रस्तावना (पृ० ४८) में लिखा है कि “प्रत्यक्षके दो भेद हैं—१. सांख्यव्यवहारिक, २. मुख्य। सांख्यव्यवहारिक प्रत्यक्षके दो भेद— १. इन्द्रिय प्रत्यक्ष, २. अनिन्द्रिय प्रत्यक्ष। इन्द्रिय प्रत्यक्ष—अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणादि ज्ञान। अनिन्द्रिय प्रत्यक्ष—शब्द योजनासे पहले अवस्था वाले स्मृति, संज्ञा, चिन्ता और अभिनिबोध ज्ञान।” इसीको स्पष्ट करते हुये पण्डितजी लिखते हैं—हाँ ! इसमें स्मृति, संज्ञा, चिन्ता और अभिनिबोधको शब्द योजनाके पहले अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष कहा है उसे किसी भी अन्य आचार्यने स्वीकार नहीं किया। उन्हें सर्वांशमें अर्थात् शब्द योजनाके पूर्व और पश्चात्—दोनों अवस्थाओंमें परोक्ष ही कहा है। यही कारण है कि आचार्य प्रभाचन्द्रने लघुयस्त्रयकी ‘ज्ञानमाद्य’ कारिकाका यह अर्थ किया है कि—मति, स्मृति, संज्ञा, चिन्ता और अभिनिबोध ज्ञान शब्द योजनाके पहले और शब्द योजनाके बाद—दोनों अवस्थाओंमें श्रुत हैं अर्थात् परोक्ष हैं।”

आगे मुख्य प्रत्यक्षका स्वरूप लिखा है कि—“इन्द्रिय और मनकी अपेक्षाके बिना, अतीन्द्रिय, व्यवसायात्मक, विशद, सत्य, अव्यवहित, अलौकिक, अशेष पदार्थोंको विषय करने वाले अक्रम ज्ञानको मुख्य प्रत्यक्ष कहते हैं।”

डॉ० सा० ने सर्वज्ञता पर विस्तारसे विचार किया है। सर्वप्रथम उन्होंने कुमारिलके मतकी समीक्षा की है।

इस समीक्षासे पं० जीके जैन-बौद्धदर्शनके अतिरिक्त वैदिक दर्शनके मूलभूत ग्रन्थोंके अध्ययन एवं उनकी समालोचनात्मक दृष्टि परिलक्षित होती है।

पं० जीने ‘अकलङ्कग्रन्थत्रयम्’ की प्रस्तावनाके मध्यमें पूर्वपक्षियों द्वारा उठाये गये अनेक प्रश्नोंका समाधान ऐसा तर्क एवं आग-सम्मत प्रस्तुत किया है कि सामान्य व्यक्ति भी उसे पढ़कर उसके हार्दको समझ सकेगा।

आगे न्यायाचार्यजीने ( प्रस्तावना पृ० सं० ९४ में ) नयों और नयाभासोंका स्पष्ट एवं तुलनात्मक विवेचन किया है। नयोंके सन्दर्भमें आचार्य सिद्धसेनके कथनको युक्तिसंगत बनाते हुये वे लिखते हैं कि—चूँकि नैगम नय संकल्प मात्राग्राही है तथा संकल्प या तो अर्थके अभेद अंशको विषय करता है या भेद अंशको। इसीलिये अभेद संकल्पी नैगमका संग्रहनयमें तथा भेद संकल्पी नैगमका व्यवहार नयमें अन्तर्भाव करके आचार्य सिद्धसेनने नैगम नयको स्वतन्त्र नय नहीं माना है। इनके मतसे संग्रहादि छह ही नय हैं।

विद्वान् सम्पादकने यहाँ इतनी अच्छी तुलनात्मक नय व्यवस्था प्रस्तुत की है कि उनके इस संक्षिप्त विवेचनमें ही नयवादकी पूर्ण और स्पष्ट मीमांसा हो जाती है और आचार्य सिद्धसेन एवं आचार्य अकलङ्कके मन्तव्योंका भी स्पष्टीकरण हो जाता है ।

सात भंगोंकी क्रय व्यवस्थामें ( प्रस्तावना पृ० सं० १०१ ) न्यायाचार्यजीका मत है कि—अवक्तव्य मूल भङ्ग है, अतः सप्तभङ्गोंके उल्लेख क्रममें अवक्तव्यका क्रम तीसरा होना चाहिये ।

अपने इस मन्तव्यके कारण आचार्य मलयगिरिने आचार्य अकलङ्कके मन्तव्यकी आलोचना की है, किन्तु श्वेताम्बर विद्वान् उपाध्याय यशोविजयने समन्तभद्र और सिद्धसेन आदिके मतका समर्थन किया है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि डॉ० महेन्द्रकुमार जैन न्यायाचार्यने काफी मनन और चिन्तन करके इस प्रस्तावनाको लिखा है । जिसमें न केवल जैनदर्शन, अपितु जैनेतर दर्शनोंके मूल सिद्धान्तोंको प्रस्तुत कर उनका समाधान जैनदर्शनके परिप्रेक्ष्यमें खोजनेका सार्थक प्रयास किया है ।

इस विस्तृत प्रस्तावनामें उल्लिखित विषय वस्तु तथा तर्क एवं आगम-सम्मत समाधान प्रस्तुत करनेसे डॉ० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्यकी शोध-खोज एवं समालोचनात्मक दृष्टि एवं उनका अतुलनीय वैदुष्य मुखर हुआ है ।

